श्रीराजेन्द्रप्रवचनकार्यालय-खिरोला-१८



श्रीयतीन्द्रविहार-दिग्दर्शन।

(चतुर्थ-भाग)

व्याख्यानवाचस्पत्युपाध्याय:—
मुनिराज-श्रीयतीन्द्रविजयजी महाराज-रचित।



प्रकाशक—
मुनि श्रीविद्याविजयजी-सागरविजयजी के सदुपदेश से
श्रीसौधर्मबृहत्तपोगच्छीय-श्वेताम्बरजैनसंघ
मु० कुकशी (धार) नीमारप्रान्त।



श्रीवीरनिर्वाण २४६३	प्रथमावृत्ति	विक्रमाब्द १९९३
राजेन्द्रसूरि संवत् ३०	मूल्य १ रु.	खिस्ताब्द १९३७

Printed by Gulabchand Lallubhai Shah,
at the Mahodaya P. Press-Bhavnagar.

समर्पणम् ।

सुविहितसूरिशक्रचक्रचूडामणि–जङ्गमयुगप्रधान–सर्वतन्त्रस्वतन्त्राऽऽबालब्रह्मचारि–परमयोगिराज–प्रातःस्मरणीय–जगत्पूज्य–गुरुदेव-प्रभुश्रीमद्-विजयराजेन्द्र-सूरीश्वरजी महाराज ।

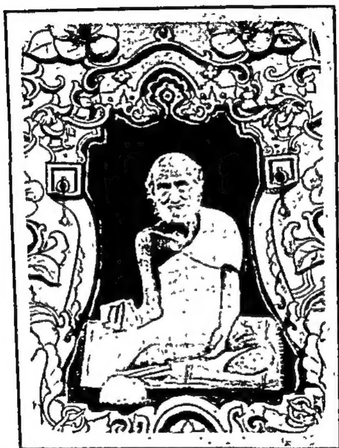
आपने अपने सम्यग् ज्ञान, क्रिया और तपस्तेज से सर्वत्र जैनसंसार को वास्तविक साधुत्व मार्ग का भान कराया और मुझ पामर को रत्नत्रय देकर भव-भ्रमण की भीति से बचाया, जिससे कि मैं आपसे कभी उन्नृण नहीं हो सकता । अस्तु.

हे देव ! मुझको आपने जो वस्तु दी है दान में,
अनुभव विना वह आ नहीं सकती कभी अनुमान में।
उपकार शोधन मैं करूंगा आपका किस रीति से ?,
गुरुदेव ! पुस्तक है समर्पण आपको यह प्रीति से ॥१॥

भवदीयचरणकजमधुप—

मुनि श्रीयतीन्द्रविजयोपाध्याय ।

परमयोगिराज-प्रातःस्मरणीय-गुरुदेव-



श्रीमद्-विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज।

श्री महोदय प्रेस—भावनगर.

विषय-प्रदर्शन ।

—: प्रशस्ति-लेखानुक्रम :—

हार्दिक-सन्देश।

संसार में साहित्यप्रचार, धर्म, समाज और विज्ञान की वृद्धि का वास्तविक कारण खोजा जाय तो साधु-साध्वियों का अप्रतिबद्ध विहार ही है। पूर्व-काल में भारतवर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक छोटे बड़े सभी गाँव-नगरों में साधु-साध्वियों का विहार होता था और साधुलोग तकलीफों तथा जाति की अपेक्षा रक्खे विना सर्वत्र समानरूप से अपनी उपदेश-धारा वर्षाते थे। इससे जैनियों की संख्या एकदम बढ़ कर चालीस करोड़ पर पहुंची थी और जैनधर्म सार्वधर्म या राष्ट्रधर्म के रूप में परिणत हुआ था। बाद में साधु-साध्वियों का विहारक्षेत्र ज्यों ज्यों संकुचित होता गया, त्यों त्यों जैनों की कमी होती गई, जो आज बारह लाख के करीब रह गई है और आधुनिक परिस्थिति में उसका भी अस्तित्व आशंका से भरा हुआ है। इस पवित्र भारतवर्ष में एक दिन ईसाई और आर्यसमाजियों का नाम निशान भी नहीं था और उनके स्वरूप से भी लोग बिलकुल अज्ञात थे। लेकिन उन्होंने समय को मान दे और जातिवाद को ठुकरा कर उपदेशकों के द्वारा उपदेश और साहित्य का प्रचार छोटे-बड़े सभी गाँवों में आरम्भ किया, जिसके फलस्वरूप आज उनकी संख्या लाखों करोड़ों पर पहुँच चुकी है। बौद्धलोग हताश होकर हिन्दुस्तान

से देश निकाला पा चुके थे, परन्तु उन्होंने देश काल का आश्रय लेकर हिन्दुस्तान में पुनः प्रवेश किया और शनैः शनैः अपने सिद्धान्तों का भी प्रचार करना शुरु कर दिया, जिसके प्रभाव से इसाई और आर्यसमाजियों के समान यहाँ उनका भी बोल–बाला आने का समय आ गया है। कई विद्वान बौद्धसिद्धान्तों के तरफ आकर्षित हो कर उनको तन–धन से अपनाने को कटिबद्ध हो रहे हैं, इसकी आखिरी सत्ता वही होगी जो पूर्व काल में मौजूद थी। कहने का मतलब कि जो लोग अनेक विपत्तियाँ और माना-पमान की अंशमात्र भी भीति न रख कर आगे पैर बढ़ाते (विहार करते) हैं, उनका समाज और धर्म बराबर बढ़ता ही है। जो लोग हमदर्दी के रोग से ग्रसित और आगे पैर बढ़ाने में शिथिल हैं, उनका समाज और धर्म प्रतिदिन ह्रास के पींजरे में घिरे विना नहीं रहता।

भारतवर्षीय पल्लीवाल, मोड़, जांगड़ा (दसा) पोरवाड़, कपूर, कपोत, और दसोरा आदि कई महाजन जातियों की उत्पत्ति का मूल इतिहास तपासा जाय तो पता चलेगा कि ये जातियाँ श्वेताम्बर जैनाचार्य प्रतिबोधित और उनके बतलाये धर्म को पालन करने वाली थीं। आज भी इन जातिवालों के बनवाये हुए जिनालय और इन्होंकी प्रतिष्ठा कराई हुई जिनप्रतिमाएँ मौजूद हैं। परन्तु जैनसाधु–साध्वियों के उपदेशों के अभाव और जैनेतरों के नैत्यिक परिचय से ये जातियाँ जैनेतर संप्रदायों में मिल गईं और आज वे जैनधर्म की द्वेषिणी बन गईं। इतना

होने पर भी अभी इनमें जैनधर्म के कुछ कुछ संस्कार अवश्य पाये जाते हैं जो इनको सुधारने के चिह्नस्वरूप हैं।

यदि जैनाचार्य, उपाध्याय, पंन्यास, गणि, मुनि आदि अपने अन्धभक्त श्रीमन्तों, फेन्सी उपाश्रयों, विनाशी वाह–वाहों और चा-रवड़ी–दूधपाकों का मोह छोड़ कर अप्रतिवद्ध विहारों का परीषह–उपसर्ग सहन करना सीख लेवें तो थोड़े ही प्रयास से ये जातियाँ फिर भी जैनधर्म में आ सकती हैं। मंगलविजयोपाध्यायने बंगाल में, न्यायतीर्थन्यायविजयने महाराष्ट्र में और दर्शनविजयजीने विहार में तकलीफों को सह कर अपना विहारोपदेश लम्बाया तो उसके फलस्वरूप जैनेतर जगत में जैन जागृति होने के साथ साथ पल्लीवाल और सराक जातियाँ पुनः श्वेताम्बर जैनधर्म में कायम हुईं, और कई जैनेतर विद्वानों को जैनधर्म की वास्तविकता का पत्ता लगा।

इतिहास सम्बन्धी जैनवाङ्मय से भी पता लगता है कि भद्रबाहु, आर्यसुहस्ति, रत्नप्रभ, वृद्धवादी, सिद्धसेन, पादलिप्त, हरिभद्र, हेमचन्द्र, वादीन्द्रदेव, बप्पभट्टी, जिनचन्द्र, जगच्चन्द्र, देवसूरि, हीरविजयसूरि, सेनसूरि आदि अनेक प्रभावक जैनाचार्योंने राजसभाओं में जाकर दुर्जेय–जैनेतर विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ में विजय पाकर और राजा, महाराजा, महामात्य, सेट, सेनापतियों को जैनधर्म में दीक्षित करके वीतराग शासन को राष्ट्रधर्म बनाया, जिसके प्रभाव से भारतवर्ष में सर्वत्र जैनधर्म का ही साम्राज्य हुआ। इतना ही नहीं, बल्कि जैनधर्म का अस्तित्व भी

उन्हीं महदाचार्यों के प्रभाव से टिका हुआ है। आज जैनेतर संसार में जैनधर्म और उसके सिद्धान्तों की पवित्रता, आप्तता और सत्यता का असीम प्रभाव पड़ रहा है, वह उन्हीं पूर्वाचार्यों की बदौलत समझना चाहिये। उन्हींमें सब से बड़ा भारी गुण यह था कि वे जुदे जुदे समुदायों और गच्छों में रहने पर भी एक दूसरे के धार्मिक कार्यों, (शासन प्रभावना के मामलों) को अपनाते, सहाय देते और परस्पर सलाह लेते थे। इसीसे उन का सब के ऊपर समानरूप से प्रभाव पड़ता था और वे अपने अभिमत कार्यों में सफल—मनोरथ बनते थे।

दरअसल साधु—वेश और ज्ञान—बोझा लादने मात्र से कोई पूज्य नहीं बनता, किन्तु जिनके सहवास, या दृष्टिमात्र से दूसरे प्राणि आत्मभावना को जागृत करने के लिये प्रयत्नशील हो स्व—पर का सुधारा करते हैं, वही वास्तविक पूज्य कहाते हैं। परम—वीतरागी साधु इसीसे आदर्श कहलाते हैं कि उनके दर्शन-मात्र से लोगों के हृदय—भवन में पापकार्यों से घृणा उत्पन्न होकर वे उनसे बचने की शिक्षा ग्रहण करते हैं। साधुदर्शन से महा-हिंसक, चोर, अत्याचारी और मद्य—मांसाशियों के भी हृदय पर गहरा असर पड़ता है। कुछ नहीं तो थोड़ी देर के लिये उनको अपने दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप अवश्य होता है, जिसका परिणाम यह आता है कि उनका पश्चात्ताप उनकी पापवृत्तियों की दौड़ती हुई ट्रेन में धक्कों का काम किया करता है। श्रीमहावीर के शासनानुयायियों का '**कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव**' यही उपदेश

होता है जिससे उनके परिचय में आनेवाले लोगों को वात्सल्य-प्रेम, ऐक्यता और संगठन शक्ति का अलभ्य लाभ मिलता और वे लोग स्व-पर का कल्याण करने में कामयाब होते हैं।

आधुनिक साधुसंस्था का वातावरण इतना विषम बन गया है कि उसमें प्रतिदिन मात्सर्य, अभिमान, कलह-प्रियता, अहंमन्यता, कटुकता, शिष्यमोह और पदवीलोभ आदि दोष दिन दूने रात चौगुने बढ़ते ही जा रहे हैं। इन्हीं दोषों के कारण वे एक दूसरे के धार्मिकोन्नति जनक कार्यों को जड़मूल से उखाड़ने का प्रयत्न करने में मस्त हैं। कोई शासन-सम्राट्, कोई आचार्यदेव, कोई धर्मावतार, कोई आगमरहस्यवेदी, कोई आगमोद्धारक, कोई जगद्गुरु, कोई योगीन्द्रचूड़ामणि, कोई मरुधरकल्पतरु, कोई तीर्थोद्धारक, कोई न्यायाम्भोनिधि, कोई साहित्य विशारद और कोई नवयुगोद्धारक आदि टाइटलों में लुब्ध हैं। कोई गणधर बनने की लालसा से भेड़ों के समान शिष्यों को बढ़ाने में और कोई अपनी वंश परम्परा का बाहुल्य दिखाने की कामना से आचार्यों का टोला बढ़ाने में ही मग्न हैं। इस प्रकार की वस्तु-स्थिति के पींजरे में घिरे हुए लोगों के द्वारा शासन, समाज, धर्म और जनता का सुधार होने की आशा करना ख-कुसुमवत् ही समझना चाहिये। अरे! आज शासन-सम्राट्, योगीन्द्रचूडामणि, जगद्गुरु और मरुधरकल्पतरु की मनमानी उपाधियों के धारकों की उपस्थिति रहते हुए भी उन्हों से अर्बुदाचल, श्रीकेशरियाजी और सिद्धाचल का दुःखद सवाल भी हल नहीं हो सका, यह कितना अफसोस है।

आज समाज का अंग छिन्न–भिन्न होता जा रहा है, साधुओं के प्रति लोगों की अश्रद्धा बढ़ती जा रही है, नवयुवकों की धार्मिक श्रद्धा हटकर निरंकुशता, औधत्य, असहनशीलता और शिथिलता प्रतिदिन बढ़ती दिखाई देती है। उसका यदि वास्तविक कारण ढूँढ़ा जाय तो साधु–संस्था का पारस्परिक अनबनाव, विहार का अभाव, शासनसेवा की शून्यता और कुशिक्षाओं की बहुलता ही है। प्रायः देखा जाता है कि टाइटलधारी साधु अहमदाबाद, पालीताणा, सूरत, बम्बई आदि बड़े बड़े शहरों में वाड़ाबन्दी की लोलुपता से पड़े रहते हैं। और 'अतिपरिचयादवज्ञा' की उक्ति को चरितार्थ करते रहते हैं। यदि उनको छोटे गाँव का कोई संघ या भावुक अपने गाँव में रुकने को भी आग्रह भरी विनति करे तो उनको निःसंकोच जवाब मिलता है कि—

'અમારે જરૂરી કામ માટે આગલ જવાનું છે, અહીં શું છે, ત્યાં કામ બગડી રહ્યું છે, તમે શું જાણો છો, કોઇ રીતે રોકાઇએ તેમ નથી.'

इस प्रकार के पामर वाक्यों से उन भावुकों की धार्मिक भावना जागृत न होकर उलटी नष्ट या शिथिल हो जाती है। सुखसुविधा के प्रलोभनों से साधुलोग शहरों में नगर-पिण्डोल बनकर बिना मतलब महीनों पड़े रहते हैं जिससे जनता को कुछ भी धर्म–लाभ नहीं होता। प्रत्युत कलह प्रियता बढ़ कर समाज में वैमनस्य पैदा होता है और उसकी बुराई का उपहार साधुओं को मिलता है। इस विषय के अहम-

दाबाद, जामनगर और बम्बई के दृष्टान्त ताजे ही हैं, जो अखबारों की कसौटी पर अभी तक चढ़े हुए हैं।

समय की परिस्थिति बदली है, उसके विषम वातावरण में सर्वत्र घूम कर यदि लोगों को प्रभु–महावीर का सन्देश न सुनाया जाय तो उन में धर्मभावना प्रगट होना मुश्किल है। छोटे गाँवों की जैन जैनेतर जनता में साधु–साध्वियों के प्रति भक्ति–प्रेम, उनके हितोपदेशों के प्रति आन्तरिक लागणी और तदनुसारी यथाशक्ति प्रवृत्ति होती है। इसलिये थोड़े ही उपदेश से उनके हृदय में जैसी धर्मभावना जागृत होती है वैसी बड़े शहरों में वर्षों तक ठहरने पर भी नहीं हो सकती। शहरों के लोग दम्भ–प्रिय और अभिमानी होते हैं, इसलिये उनका धर्मप्रेम केवल लोक दिखाऊ (आडम्बरजनक) होता है, किन्तु हार्दिक नहीं। ऐसे ही आडम्बर–प्रियलोगों के लिये एक गुर्जर–विद्वान्ने लिखा है कि—

ધર્મ ખોટો નથી, ધર્મના બંધનો ખોટા છે. ધર્મ ખરાબ નથી, ધર્માભિમાન ખરાબ છે. જન્મ, જીવન અને મૃત્યુનાં અન્વેષણ કરવા અને એ ત્રણ મહા ઘટનાઓનું નિયંત્રણ કરતી કોઇ મહાસત્તાની શોધ કરવી અને વ્યક્તિગત તેમજ સામાજિક જીવનની વિશુદ્ધિ સાધવી એ ધર્મમાત્રનું એકજ તત્ત્વ હોઇ શકે. બાહ્યાચારો અને દેખાવો આપણને ભૂલમાં નાંખે છે. અન્ય ધર્મોનો અભ્યાસ આપણને વિશાલદૃષ્ટિ, ઉદારતા અને એકતા શીખવે છે.

પ્રગતિ ન સાધે તે ધર્મજ નહીં. ધર્મભાવના એટલેજ વિકાસ અને પ્રગતિની ઝંખના. ધર્મમાં વિરોધને જરા પણ

સ્થાન ન હોય. બાહ્યાચાર એ ધર્મનું હાડપિંજર છે. દેશકાલને અનુસરી એ રચાય છે. તેમાં ફેરફાર અવશ્ય થવાનો. ધર્મના ખોખા માટે મરવું-મારવું એ નિષ્પ્રયોજન છે. એટલું જ નહીં તે સમાજની પ્રગતિનું રોધક છે. ધર્મભાવનામાં એ સમાજ વિરોધી તત્ત્વ દાખલ થયું કે એ અધર્મ બની ગયોજ સમજવો. એને શુદ્ધ કર્યેજ અગર છોડ્યેજ છુટકો. ધર્મના મૂળ તત્ત્વ ઉપર ક્યાંય પણ પ્રહાર કર્યા વિના, શાશ્વતી ધર્મ ભાવનાનું વિશ્વ-માન્ય સ્વરૂપ આ શૈલીએજ કોઇ એક દિવસે લોક-ભોગ્ય બનશે.

જૈન પુ૦ ૩૪, અંક ૪૦, તા. ૧૮-૧૦-૩૬.

लम्बे विहार करने से जनता को प्रतिबोध, हिंसक प्राणियों का सुधार, वस्तु-विज्ञान, जैनसिद्धान्तों का प्रचार, हृदय-विकास, वाक्-चातुर्य, स्वभाव-परीक्षा और सन्मान आदि लाभ तो मिलता ही है। परन्तु उसके साथ साथ प्राचीन-संस्कृति, स्थापत्यकला, पूर्वाचार्यों का साहस, भिन्नविषयक ग्रन्थों का निरीक्षण, ऐतिहासिक बातों का पता, आत्मज्ञान और संयम-वृद्धि आदि का लाभ भी बड़ी सुलता से प्राप्त होता है। इसीसे शास्त्रकार-महर्षियोंने जैन साधु-साध्वियों के लिये वारिश के सिवाय शेषकाल के आठ महिना तक अप्रतिबद्ध विहार करते रहने की आज्ञा दी है। अतएव स्व-पर का अभ्युदय होने के लिये साधु-साध्वी जब मर्यादा पूर्वक प्रति ग्राम नगरों में अप्रतिबद्ध विहार करना सीखेंगे, तभी समाज और धर्म की वृद्धि होगी, अन्यथा नहीं। अस्तु.

यतीन्द्रविहार-दिग्दर्शन ग्रन्थ भी अप्रतिबद्ध विहारों का फलस्वरूप और विहार-क्षेत्रों का दर्शक है। इसका संकलन ऐति-

हासिक और भौगोलिक दृष्टि से हुआ है। इसलिये इससे इतिहासज्ञों को इतिहास की सामग्री मिलेगी और पैदल भ्रमण करनेवालों को प्रतिग्राम नगरों का रास्ता मिलेगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ का यह चौथा भाग है, जिसमें पालीताणा से अहमदाबाद; अहमदाबाद से सेरीसा, पानसर, मणासा, बीजापुर, ईडर, पोशीना, केशरियाजी; और केशरियाजी से नागफणी, डुंगरपुर, आशपुर, बड़ौदा-बांसवाड़ा, बाजना, खवासा, राजगढ़, रतलाम, खाचरौद; खाचरौद से बड़नगर, कड़ोद, राजगढ़, अमीझरा, धार, मण्डपाचल, मनावर, तालनपुर, लखमणी, आलीराजपुर, घोड़ाजोयट, बागटप्पा, पांडव गुफा और कुकशी तक के गाँवों तथा जैनतीर्थों का प्राचीन-अर्वाचीन इतिहास आलेखित है। इसमें दो परिशिष्ट भी संयोजित हैं-प्रथम-परिशिष्ट में विहार के दरमियान आये हुए छोटे बड़े गाँवों के क्रम-वार नाम, एक गाँव से दूसरे गाँव का अन्तर (कोश), उनमें जैनों की घर-संख्या, धर्मशालोपाश्रय, जिनालय संख्या और स्थिरवास के दिन का जनक कोष्टक दर्ज है। द्वितीय-परिशिष्ट में इस भाग में आये हुए जिनालय, जिनप्रतिमा, धर्मशाला और उपाश्रय के संस्कृत-गद्य-पद्यमय प्रशस्ति तथा शिलालेखों का सरल-हिन्दी में अनुवाद गुम्फित है।

इस ग्रन्थ के पूर्व प्रकाशित तीन भागों के समान यह भाग भी अपनी सज-धज में निराला और इतिहास-सामग्री का पूर्ण करनेवाला है। आशा है कि पूर्व भागों के समान पाठकगण इसको भी अपना कर हमारे परीश्रम को सफल करेंगे। इसको

अस्मच्छिष्य मुनि श्रीविद्याविजयजी और मुनि श्री सागरानन्द-विजयजी के सदुपदेश से नीमाड़प्रान्तीय कुकशी (धार) निवासी श्रीसौधर्मबृहत्तपागच्छीय श्वेताम्बर-जैनसंघने सर्व-साधारण में प्रचार करने के लिये छपा कर प्रकाशित किया है, जिसके लिये कुकशी-जैनसंघ को हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है। इतर गाँवों के जैनसंघ को भी कुकशी जैनसंघ का अनुकरण करके साहित्य प्रचार-रूप ज्ञानलाभ प्राप्त करने के लिये सदा उत्साहित रहना चाहिये।

संसार में साहित्य प्रचार ही अपने अभ्युदय का मुख्य अङ्ग है। जितना लाभ इसके अभ्यास, वाचन और मनन करने से होता है, उतना और किसीसे नहीं होता। क्रोध आदि बुरी वृत्तियों को वश में रखने और निराशाओं को अलग कर आनन्दमय जीवन व्यतीत करने में साहित्य ही मदद देनेवाला है। जहाँ उत्तम साहित्य का पठन-पाठन नहीं होता, वहाँ नित्य अशान्ति, आलस्य, विलासिता और अनीति आदि दोषों का ही साम्राज्य रहता है। अतएव साहित्य को अपनाना और उसका सर्वत्र प्रचार करना यही सब का दृष्टि-विन्दु होना चाहिये। इत्यलं विस्तरेण।

यत्पादपद्ममनिशं स्मरतां नराणां,
धर्मे मतिः क्षितितले विपुला च कीर्त्तिः।
गेहे सुमङ्गलमनारतसम्पदासी,
राजेन्द्रसूरिरिह शन्ततुतां ससङ्घे॥ १॥

विक्रम सं० १९९३ पौष-
सुदि ७ मु० कुकशी (धार) } —मुनियतीन्द्रविजयोपाध्याय।

जगत्पूज्य-

श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरेभ्यो नमः

श्रीयतीन्द्रविहार-दिग्दर्शन

(चतुर्थो भागः)



भाजम्भाजं यदीयं क्रमजलजयुगं भक्तिमन्तः कियन्तः,
श्रद्धावन्तो महान्तः शिवसुखमतुलं लब्धवन्तो जगत्याम् ।
यातारो यान्ति चाग्रेननजनकृपया शाश्वतं धर्म्ममेनं,
प्रादुश्चक्रे दयालुः स हि भवतु सदा शर्मकृन्नाभिसूनुः ॥१॥

लोके कीर्त्तिलता गता दशदिशो यस्यानवद्या दृढा,
सर्वान्सज्जनपादपान्सुविपुलानाश्रित्य संराजते ।
विद्या चाखिललोकलग्नकुमतिध्वान्तं पराधूनयत्,
स श्रीसङ्घसुमङ्गलाय भवताद् राजेन्द्रसूरिः प्रभुः ॥२॥

श्रीवागरानगर (मारवाड़) वाले सेठ प्रतापचन्द धूराजी संघवी और कच्छ-मंजलरेलड़ीया वाले शा. ऊमरशी देवजी नाथाणी के अत्याग्रह से विक्रमसंवत् १९९१ में हमारा चातुर्मास मुनिश्रीअमृतविजयजी, मुनिविद्याविजयजी, मुनिसागरानन्दविजयजी, मुनिचतुरविजयजी, मुनिउत्तमवि-

जयजी; इन पांच मुनि वरों के सहित सिद्धक्षेत्र-श्रीपालीताणा में हुआ। चारों मास गिरिराज के दर्शन, व्याख्यानवाचन, ज्ञानगोष्ठी, उपधानतपःक्रियाराधन और महामहोत्सव आदि आनन्द के साथ व्यतीत हुए। बाद में मालवदेशीय श्रीसंघ की विज्ञप्ति को ध्यान में लेकर पौष कृष्ण ६ को प्रातःकाल में श्रीपालीताणा से मालवे की तरफ हमारा विहार हुआ। बस, प्रस्तुत भाग में उसी विहार के दरमियान आये हुए गाँव, नगर, आदि का प्राचीन अर्वाचीन उपलब्ध ऐतिहासिक वृत्तान्त संक्षिप्त-रूप से गुम्फित है।

१ मोखड़का—

यह पालीताणा तालुके का सदर स्थान है, जो रजावल (वोरवरा) नदी के बांये किनारे पर आबाद है। इस तालुके के नीचे ४० गाँव हैं और यहाँ पर पालीताणा दरबार का घोड़ों का रसाला (पेंड़का) रहता है। गाँव में गुजराती स्कूल, पोस्टऑफिस और टेलीफोन भी है। नदी के किनारे और गाँव के चारो तरफ बम्बूल की झाड़ी अधिक होने से यहाँ कांटाओं का उपसर्ग अधिकतर है। गाँव में एक दो मंजिली छोटी धर्मशाला और सुमेरुशिखर वाला छोटा जिनालय है, जिसमें श्रीमहावीरस्वामी की श्वेतवर्ण सवा फुट् बड़ी प्रतिमा विराजमान है, जो अर्वाचीन और पालीताणा से लाकर स्थापन की गई है। यहाँ बीसा-श्रीमालीजैनों के १० घर हैं, जो एक ही गोत के हैं और

सिद्धाचलजी के निकटवर्त्ती होने से इनमें साधु साध्वियों के प्रति बिलकुल भक्ति-भावना नहीं है।

१ सोनगढ़—

सोनगढ़एजेन्सी का यह सदर स्थान है और इसके आधीन में ५२ गांव हैं। यहाँ एजेन्सी का थाना, अंग्रेजी मदर्सा, इसाई स्कूल, पोस्टऑफिस, रेल्वेस्टेशन आदि भी हैं। इसका प्राचीन नाम सोनपुरी था, परन्तु अंग्रेजों का अमल होने बाद इसका वर्त्तमान नाम कायम हुआ। सिहोर रेल्वे नहीं थी, तब श्रीसिद्धाचल यात्रा जाने वाले यात्री यहीं पर उतर कर जाते आते थे। गाँव में आणंदजी कल्याणजी-पेढ़ी की एक जीर्ण धर्मशाला भी है, जिसमें एक खवा बिना भाड़े रहता और मांस-मदिरादि केफी चीजों का उपयोग करता है। इसीसे धर्मशाला में कोई यात्री या साधु ठहरता नहीं है, जैनधर्मशालाओं की इससे अधिक फिर क्या दुर्दशा होना चाहिये ? । शहर से स्टेशन जानेवाली पक्की सड़क के दहिने तरफ 'श्रीमहावीर-चारित्ररत्नाश्रम' है। इसके मकानात, बगीचा और खेतों में ३० बीघा जमीन घेरी हुई है। पांच बीघा जमीन में विद्याभवन, कसरतशाला, मनसुखव्याख्यानालय, जिनालय और यात्रियों के रहने योग्य कमरे बने हुए हैं और शेष जमीन में बगीचा व खेत है, जिनमें आम के ५००, निम्बू के २०० और केले आदि के १०० दरख्त लगाये हुये हैं। बगीचा और खेत की सारी

व्यवस्था साधुधर्म से पतित शिथिलाचारी चारित्रविजयजी, ढूंढक साधु कल्याणचन्द्र तथा गुलाबचन्द्र स्वयं करते हैं और यह आश्रम इन तीनों के आश्रय पर ही निर्भर है। आश्रम में पहले अधिक जैनबालक थे, परन्तु उसके संचालक साधुनामधारियों की पोपलीला खुल जाने से इस समय इसमें २४ जैनबालक हैं। सोनगढ़ में घंटा घर के पास मनसुखगुरुकुल भी है, जिसमें १५ जैनविद्यार्थी अंग्रेजी और धार्मिक शिक्षा पाते हैं। महावीर–चारित्ररत्नाश्रम के जैनबालक भी उक्त गुरुकुल में ही अभ्यास करने को जाते हैं। शहर में वीसा श्रीमाली जैनों के साधारण स्थितिवाले दश घर हैं, जो नहीं के समान और तीर्थमुंडिये हैं।

३ पालड़ी—

सोनगढ़–एजेन्सी का यह छोटा गाँव है जिसमें कास्तकार आदि के ६० घरों के सिवाय वीसाश्रीमाली जैनों के २ घर हैं, जो अच्छे भावुक और साधुसाध्वियों की विवेक पूर्वक भक्ति करने वाले हैं। गाँव में एक दो मंजिला उपाश्रय है, उसीके ऊपरी होल में श्रीसंभवनाथ की छोटी धातुमय पंचतीर्थी स्थापित है, जो प्राचीन और दर्शनीय है।

४ चमारड़ी—

भावनगर से धंधुका जाने वाली सड़क के दहिने तरफ सोनगढ़–एजेन्सी के तावे का खोड़ायडूंगरी की ढालु जमीन

पर यह गाँव आबाद है। इसके उत्तर में भावनगरखाड़ी का रण है, जो केवल खारी, काली, मृत्तिकामय और घास-वृक्ष शून्य है। गाँव में वीसाश्रीमाली जैनों के एक ही परिवार के तीन घर हैं, जो अच्छे भावुक और विवेकज्ञ हैं। साधु साध्वियों के लिये एक छोटा दो मंजिला उपाश्रय है, जिसके ऊपर के होल में सिद्धचक्र, महावीर और गौतमस्वामी की तस्वीरें विराजमान हैं, यहाँ के श्रावक श्राविका इन्हींका हमेशां नियमतः दर्शन-पूजन करते हैं। गाँव से आधा माइल के फासले पर 'हिसार' नामक डूंगरी है, जिसके ऊपर जैनमन्दिर का खंडेहर पड़ा है। कहा जाता है कि राजा कुमारपाल जब सिद्धाचलजी का संघ लेकर यहाँ आये थे, तब उन्होंने इस डूंगरी पर श्रीपार्श्वनाथ का विशाल जिनालय बनवाया था।

५. वला (वल्लभीपुर)—

भावनगर से २० माइल दूर पश्चिम में घेलारानदी के कांठेपर काठीयावाड़ एजेन्सी के तीसरे नम्बर के संस्थानों में से यह एक है और उस संस्थान की राज्यधानी का मुख्य शहर है। इसका प्राचीन नाम 'वल्लभीपुर' है और अब भी जूने ढंग से ही बसा हुआ है। सिद्धाचल की तलेटी पहले यहीं पर थी और यात्रियों को भाता भी यहीं दिया जाता था। शिलादित्य सप्तम के समय काकुसेठ के द्वारा वल्लभी का नाश १३०० सौ वर्ष पहले सन् ६७५ इस्वी में हुआ था। जैन-

शास्त्रों से पता लगता है कि इसकी जाहोजलाली के समय आचार्य श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणने श्रीवीरनिर्वाण से ९८० या ९९३ में यहाँ भारी श्रमणसंघ एकत्रित करके सर्वानुमति से जैनागमों को पुस्तकारूढ़ किया। मारवाड़-गोड़वाड़ परगने के तीर्थ नाडलाई में जो विशाल महावीर जिनालय है, उसको संडेरकगच्छीय समर्थ आचार्य श्रीयशोभद्रसूरि विद्याशक्ति से इसी नगरी से उड़ा कर ले गये थे। इस समय इसमें वीसाओसवालों के २५, वीसाश्रीमालजैनों के ४० और दशाश्रीमालजैनों के ४० एवं श्वेताम्बर जैनों के कुल १०५ घर हैं, जो विवेकहीन, कलहप्रिय, और लकीर के फकीर तीर्थमुंडिये हैं। इसीसे यहाँ किसी योग्य साधु साध्वी का सपरिवार चोमासा नहीं होता, जो एकल विहारी, स्वच्छन्दचारी भोजनानंदी हैं, उन्हींका कभी कभी चोमासा हो जाता है। शहर में सर्वत्र इलेक्ट्री लगी हुई है, दवाखाना, सरकारी स्कूल, पोस्ट ऑफिस भी है और यहाँ के दरबार गोहिल सरदार हैं, जो पालीताणा के भाईबंधु हैं। धंधुका से भावनगर जाने वाली रेल्वे का स्टेशन भी यहाँ से १२ मील की दूरी पर है और पक्की सड़क भी है।

शहर में एक ७५ वर्ष पहले का बना जूना दो मंजिला उपाश्रय है, उस में वृद्धिचन्द्र जैनपाठशाला और एक पुस्तकालय है जिसमें हस्तलिखित व मुद्रित ग्रन्थों का अच्छा संग्रह है; इसके अलावा मुनिजयन्तविजयजी आदि के संग्रहित

आगमादि ग्रन्थों के चार कपाट भी सुरक्षित हैं, जो उन्होंकी रजा के विना किसीको नहीं बताये जाते। जूने उपाश्रय के सामने ऊंची कुरशी पर एक शिखरबद्ध जिनालय है, जो प्राचीन है। इसमें मूलनायक श्रीपार्श्वनाथ की सवा हाथ बड़ी प्रतिमा सपरिकर विराजमान है, जो अर्वाचीन है। इसके दहिने भाग में श्वेतवर्ण एक वेंत बड़ी सपरिकर श्री आदिनाथ की प्राचीन प्रतिमा स्थापन की हुई है। कहा जाता है कि पहले यही आदिनाथ प्रतिमा मूलनायक के स्थान पर विराजमान थी और उसके प्रभाव से जैनों में अमन चमन वर्त्तता था। लेकिन जब से उस प्रभावशालिनी मूर्त्ति को उठा कर वर्त्तमान पार्श्वनाथ प्रतिमा मूलनायक के जगह बैठाई गई है, तब से यहाँ के जैनों में पारस्परिक कदाग्रह और जान माल की कमी होती जा रही है। 'विना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय' यह उक्ति यहाँ-पर पूरे तौर से चरितार्थ होती है। जिनालय में पाषाणमय १० प्रतिमा, धातुमय पंचतीर्थियाँ १८ और गट्टाजी ९ हैं, जो प्राचीन अर्वाचीन दोनों हैं। जिनालय के बांये तरफ की पड़शाल में एक आरसोपल की छत्री है, जिसमें श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण, श्रीमल्लवादिसूरि, श्रीधनेश्वरसूरि, विजयानन्दसूरि, वृद्धिचन्द्र-जी की अर्वाचीन मूर्त्तियाँ स्थापित हैं और उसकी बाहर की भींत पर श्रीसिद्धाचलजी तीर्थ का सोनेरी दर्शनीय और सुन्दर चित्रपट भी बना हुआ है।

६ कानपुर—

वला से धंधुका जानेवाली सड़क के बांये किनारे पर यह गाँव आबाद है, जिसमें कास्तकारों के ५० घरों के सिवाय जैन का भावशून्य एक घर और एक जीर्ण उपाश्रय है, जो ठहरने योग्य नहीं है। यहाँ के जैनेतर भी सत्संग से शून्य और जैन साधु-साध्वियों के द्वेषी हैं।

७ मूलधराई—

वलास्टेट का यह छोटा गाँव है, जो धंधुका जानेवाली सड़क के दहिने तरफ है। इसमें एक उपाश्रय और पांच घर दसाश्रीमाल के हैं। उनमें दो घर स्वामिनारायण का धर्म पालनेवाले और तीन घर स्थानकवासी हैं। जैन साधु साध्वियों को यहाँ आहार पानी मिलने की दुर्लभता है। जलखारा है वह भी पैसे का एक ही घड़ा भर बमुस्किल से मिलता है।

८ वरवाला—

लींबड़ीस्टेट के तालुके का यह सदर स्थान है, जो उतावली नदी के बांये तट पर बसा हुआ और इसकी आबादी ५००० मनुष्यों के करीब है। इसके नीचे २४० गाँव हैं, इसको विक्रम सं० १७९१ में बांसीशाह महाजनने बसाया है और उसके वंशज अब भी यहीं रहते हैं। उसीने इसके चारो तरफ किलाकोट बनवाया था, जो इस समय जीर्ण-

शीर्ण अवस्था में है। गाँव में मूर्त्तिपूजक जैनों के २५ और स्थानकवासियों के २०० वर हैं, जो प्रायः दसाश्रीमाली महाजन हैं। यहाँ स्थानकवासियों की अधिकता होने से पहले जिनालय बनवाने नहीं देते थे, परन्तु १५० वर्ष पूर्व जब बरवालातालुका एक देरावासी को जागीर में इजारे दिया गया, तब उसने राजकीय बल से शिखरबद्ध जिनालय बनवा के उसमें मूलनायक श्रीपद्मप्रभस्वामी की श्वेतवर्ण एक फुट् बड़ी प्रतिमा स्थापन की, जो अब भी विद्यमान है। इसके अलावा पाषाणमय ४, धातुपंचतीर्थी ५ और गट्टाजी ५ मौजूद हैं। एक विशाल जूना उपाश्रय भी है, जिसकी कतिपय चौक की ओरडियाँ और सामने का भाग भाड़े दिया हुआ है। इसके अलावा महाजन का बंडा भी हैं, शहर में आने-वाली सभी बैल गाडियाँ इसी बंडा में ठहरती हैं और उनसे प्रति गाड़ी आधा आना भाड़ा लिया जाता है। उपाश्रय में गर्मजल भी होता है जो साधु साध्वियों को भी व्होराया जाता है और पूजा करनेवालों के स्नान में भी काम लिया जाता है। अस्तु, यह गाँव 'घेलाशाहनो बरवालो' इस नाम से पहिचाना जाता है।

९ भीमनाथ—

भादरनदी के पश्चिम तट पर गोधा से धंधुका जानेवाली सड़क से पूर्व में लगते ही यह स्थान है, जो वैष्णवों के इस

प्रान्तीय छोटे धामों में से एक है। यह इसी नामक गाँव के बीच में है और गाँव की कुल आबादी ५०० मनुष्यों की है। यहाँ राजा भीमनाथ का बनवाया शंकर का छोटा देवल है, जो छः हजार वर्ष का पुराना माना जाता है। प्रतिवर्ष यहाँ श्रावणसुदि पूर्णिमा का मेला भराता है, जिसमें बीस हजार तक दर्शक यात्री इकट्ठे होते हैं। भीमनाथ तालुके के आठ गाँव हैं, उनकी कुल आवक और मेलेकी आवक यहाँ के घरबारी जीवनगिरि नामक महन्त लेते हैं। आस-पास वाले साठ गाँवों के औदिच्यादि ब्राह्मण भाद्रवा कृष्ण अमावास्या के दिन यहीं आकर यज्ञोपवीत (जनेउ) धारण करते हैं और महन्त के तरफ से हरएक ब्राह्मण को चार आना दक्षिणा दी जाती है। यहाँ का महन्त प्रत्येक संप्रदाय को समान दृष्टि से देखने वाला है, और हरएक संप्रदायी साधुओं की भक्ति करनेवाला है। यात्रियों के ठहरने के लिये महन्त के तरफ से विशाल धर्मशाला बनी हुई है जिसमें महन्त की हवेली, उसके बगल में राजा रईसों के ठहरने योग्य सुन्दर बंगलें और शेष यात्रियों के लायक जुदे जुदे कमरे बने हुए हैं। भीमनाथ का देवल हवेली के सामने हैं और सं० १९२२ में इसका उद्धार हुआ है, जिसका परिचायक देवल की भींत पर एक शिलालेख लगा हुआ है—

"संवत्त शत उगणीस, वरस वावीस वखाणो।
सुद तृतीया वैशाख, सोमवार सर जाणो॥

किया शिवालय काम, नाम गिरि ईश्वर नामी।
दुगुणा खरच्या दाम, साम भीमेसर सामी॥
जग कीरत अचल राखी जणे, मन क्रम वचन प्रमाणीयो
कैलासतणी रचना करी, जस जग जालम जाणीयो १"

जुमले रू० ११४०) महंत दयालगिरिजी पिता गजराजगिरिजी।"

भीमनाथ के वहीवटदार, कोठारी आदि नौकर जैन वैष्णव दोनों हैं, इससे यहाँ जैन साधु साध्वियों को किसी जात की तकलीफ नहीं पड़ती। यहाँ से दक्षिण पोलासपुर नामका गाँव है जो चार फलांग दूर है। इसमें ५०० मनुष्यों की आबादी है, जिनमें वैष्णव दसाश्रीमाली महाजन के दो घर हैं, जो जैन साधुओं की भी आहारादि भक्ति करनेवाले हैं। इसके पास ही पोलासपुर नामका धंधुका जानेवाली रेल्वे का स्टेशन भी है।

१० धंधुका—

गवर्मेन्टतावे का जूनी फेसन का यह अच्छा कस्वा है, जो १४००० मनुष्यों की आबादी वाला और इसके नीचे ४८ गाँव हैं। सरकारी कोर्ट, पोस्टऑफिस, मदर्सा और रेल्वे-स्टेशन भी है। गाँव में सफाई बिलकुल नहीं, गली गली में गलीचखाना है और जंगली प्रदेश भी कीचड़मय है। एक कोश तक जाने पर भी स्थंडिलभूमि शुद्ध नहीं मिलती, इससे

यहाँ एकलविहारी साधु सिवाय योग्य क्रियापात्र साधु एक या दो दिन से अधिक नहीं ठहरता। यहाँ वीसा श्रीमाली के २५, दसाश्रीमाली के १५ और भावसार के ३५ एवं जैनों के कुल ७५ घर हैं, जिनमें ४५ घर मूर्त्तिपूजक और शेष स्थानकवासी हैं। समर्थ और प्रभाविक आचार्य कलिकाल-सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्रसूरिजी का जन्म इसी नगर में हुआ था। उनके स्मारकरूप में उनकी यहाँ जिनालय के पास आरसो-पल की सुन्दर छत्री है जिसका शिलालेख इस प्रकार है—

આરસપાષાણુની આ દેહરી રાજાધિરાજ કુમારપાલ પ્રતિબોધક કલિકાલસર્વજ્ઞ શ્રીહેમાચાર્યજી મહારાજની મૂર્ત્તિ વિરાજમાન કરવા ગુરૂવર્ય શ્રીહંસવિજયજી મહારાજના શિષ્ય પન્યાસ શ્રીસંપતવિજયગણિ મહારાજના સદુપદેશથી અમદાવાદનિવાસી શેઠ વીરચંદ દીપચંદ સી. આઇ. ઇ. ના પુત્ર શ્રીયુત ભોગી-લાલભાઇયે પોતાની માતા શ્રીમતી ડાહીબાઇના પુણ્યદ્રવ્યથી સંવત્ ૧૯૮૧ માગસર સુદિ ૧૧ ના શુભ દિવસે કરાવી છે.

इस में दो फुट्ट बड़ी श्वेतवर्ण प्रतिमा विराजमान है। जिसके आसन पर लिखा है कि—

(१) सी. आइ. इ. इत्युपनामधारको,
वनीपकानामुपकारकारकः।
स्वधर्मवीरवरचन्द्रो,
निरस्ततन्द्रोऽजनि दीपचन्द्रात् ॥ १ ॥
तद्धर्मपत्नी प्रणतेन पादयो-
र्मुनिद्वयेनोल्लसितां च पार्श्वयोः।